इकाई 5 राजनीतिक तर्क और सैद्धांतिक विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 शास्त्रीय परम्परा में बहसों का स्वरूप

5.3 नियामक सिद्धांत की समीक्षा

5.4 आनुभविक परम्परा में बहसों का स्वरूप

5.5 प्रत्यक्षवाद का पतन और एक विकल्प रूप में व्याख्यात्मक सिद्धांत

5.6 राजनीतिक सिद्धांत में नियामक बदलाव

5.7 आधारवादी और उत्तर-आधारवादी सिद्धांतों में बहसों की प्रकृति

5.8 संकल्पनात्मक विश्लेषण

5.8.1 प्रत्यक्षवादी विश्लेषण

5.8.2 व्याख्यात्मक दृष्टिकोण

5.9 सारांश

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

यह इकाई स्वयं को राजनीतिक बहसों के स्वरूप तथा संकल्पनाओं के विश्लेषण से जोड़ती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- शास्त्रीय और आनुभाविक परम्पराओं में राजनीतिक बहसों की प्रकृति पर चर्चा कर सकें;
- प्रत्यक्षवाद का पतन एवं एक विकल्प स्वरूप व्याख्यात्मक सिद्धांत के उदय पर सूक्ष्म दृष्टि डाल सकें;
- आधारवादी एवं उत्तर-आधारवादी सिद्धांतों में बहसों की प्रकृति पर टिप्पणी कर सकें; और अन्ततः
- संकल्पनात्मक विश्लेषण के विभिन्न दृष्टिकोणों पर चर्चा कर सकें।

5.1 परिचय

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक बहसों की प्रकृति और राजनीतिक सिद्धांत में संकल्पनात्मक विश्लेषण के प्रयोजन को समझना है। सैद्धांतीकरण के निर्माण खण्डों के रूप में हमें राजनीतिक बहसों और संकल्पनात्मक विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। हम किस विषय पर बहस करते हैं और हम किस प्रकार बहस करते हैं, ये दो निर्णायक विचार हैं जो बहस की प्रकृति को निर्धारित करते हैं। बहसें सत्यअध्यर्थों के औचित्य प्रतिपादन हेतु सकारण प्रस्थापनाओं की एक शृंखला की ओर संकेत करती हैं। चूँकि राजनीतिक सिद्धांत की विभिन्न परम्पराएँ हैं जिनमें प्रत्येक की पहचान उनके विशिष्ट, सारयुक्त और सुव्यवस्थित

मुद्दे होते हैं, राजनीतिक बहसों की प्रकृति विभिन्न परम्पराओं में भिन्न-भिन्न होती है। चूँकि राजनीतिक बहसों में सत्य अध्यर्थों का औचित्य प्रतिपादन अथवा प्रमाणन पाया जाता है, विभिन्न परम्पराओं का ज्ञान सिद्धांत और उसकी कार्यप्रणाली ही राजनीतिक बहसों की प्रकृति को माफ़िक बनाती है।

एक ओर हम बहसों के आधार पर संकल्पनाओं को बनाते या रचते हैं, तो दूसरी ओर हम अपनी बहसों को संकल्पनाओं पर आधारित करते हैं। संकल्पनाएं ही वे शब्द या शब्दावली हैं, जिनकी मदद से हम कोई राजनीतिक चर्चा करते हैं। ये हमारी परिपृच्छा (inquiry) को माफ़िक बनाती हैं, साथ ही साथ राजनीतिक परिपृच्छा विषय चर्चा को सुसाध्य भी बनाती हैं। राजनीतिक बहसें संकल्पनाओं में ही उठतीं और उन्हीं के माध्यम से आगे बढ़ती हैं। संकल्पनात्मक विश्लेषण के इसी कारण दो उद्देश्य होते हैं : एक, संकल्पना में निहित यथासंभव एक इतने स्पष्ट अर्थ को सामने रखना कि 'वाद-विवाद को अनुशासित करके' अथवा 'स्वच्छंद वाद-विवाद' का निवारण करके विद्वानों के बीच असंदिग्ध संचार में मदद मिले, और दूसरे, विचाराधीन राजनीतिक बहसों की जटिलताओं को प्रस्तुत करने की दृष्टि से किसी संकल्पना के अर्थ पर विवाद की जाँच करना और सच खोलकर रखना, और इस प्रकार राजनीति संबंधी अपने ज्ञान को समृद्ध करना। संकल्पनात्मक विश्लेषण का एक तीसरा उद्देश्य भी हो सकता है, नामतः हमें उन दुर्बोध तरीकों के प्रति सतर्क करना जिनमें संकल्पनाएँ यथार्थ विषयक हमारी अनुभूतियों पर पर्दा डाल सकती हैं और आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य को धुंधला कर सकती हैं, अथवा राजनीतिक प्रथाओं संबंधी वैकल्पिक कल्पनाशक्तियों को बाधित कर सकती हैं। सर्वाधिक सामान्य स्तर पर, विभिन्न परम्पराओं को **नियामक** और **आनुभविक** परम्पराओं के रूप में पहचाना जा सकता है। परन्तु नियामक परम्पराओं में रहकर, सत्य अध्यर्थों का औचित्य प्रतिपादन, जो कि बहस का उद्देश्य ही है, विभिन्न मानदण्डों पर आधारित होता है, और इसीलिए हम इन परम्पराओं को आंतरिक रूप से **आधारिक** और **उत्तर-आधारिक सिद्धांतों** की शब्दावली में बाँट देते हैं। इस प्रकार, राजनीतिक बहसों की प्रकृति, हमारा दावा है कि एक परम्परा विशेष में भी भिन्न होगी। उदाहरण के लिए, नियामक परम्पराओं के भीतर राजनीतिक बहसें आधारवादी और उत्तर-आधारवादी सिद्धांतों के बीच भेद करेंगी।

5.2 शास्त्रीय परम्परा में बहसों का स्वरूप

प्लैटो से लेकर मार्क्स तक अनेक दार्शनिक हुए हैं जिनकी कृतियों को व्यापक रूप से वह शामिल करने वाला स्वीकार किया जाता है जिसे **पाश्चात्य शास्त्रीय परम्परा** कहते हैं। इस परम्परा में राजनीतिक बहसें आम तौर पर इस तथ्य के कारण नियामक प्रकृति की रही हैं कि मुद्दे और विचार का विषय इस प्रकार की बातें रही हैं जैसे – न्याय क्या है? क्या मानवाधिकार हैं और यदि ऐसा है तो वे क्या हैं? राज्य की क्या भूमिका होती है? क्या व्यक्ति जन की परिभाष्य आवश्यकताएँ हैं और यदि ऐसा है तो उन्हें पूरा करने की जिम्मेदारी किसकी है? क्या सरकार को अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक खुशहाली हेतु प्रयास करना चाहिए और, यदि ऐसा होना चाहिए तो इस अनुष्ठान में अल्पसंख्यकों का क्या स्थान है? कौन सी बात सरकार को वैधता और किसी राज्य को संप्रभुता प्रदान करती है? संसाधनों पर किस प्रकार के दावे योग्यता अथवा गुण-दोष संबंधी मान्यता को सगुण बनाते हैं? शेष समाज पर अपना नैतिक दृष्टिकोण थोपने में बहुमत कहाँ तक न्यायोचित है? क्या हम सामाजिक नैतिक दृष्टिकोण संस्थाओं का पर्याप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत कर सकते हैं? सरकार का सर्वोत्तम स्वरूप क्या है?

सामान्यतया, यह शास्त्रीय परम्परा उत्तम जीवन की प्रकृति के साथ, उन संस्थागत प्रबंधों के साथ जो मनुष्य को पनपने के लिए आवश्यक होंगे, सम्बद्ध रही है ताकि उनकी

आवश्यकताएँ पूरी हों अथवा उनकी युक्तिसंगत क्षमताएँ स्पष्टतया अनुभव की जाएँ। साथ ही, इन बातों के साथ एक पूर्वाग्रह देखा गया है कि कानून, न्याय, सरकार के सर्वोत्तम रूप, व्यक्तियों के अधिकार एवं कर्त्तव्यों के साथ, और समाज के वितरणकारी संगठन के साथ **राजनीतिक रूप से सही क्या** है। राजनीतिक सिद्धांत सही और उत्तम विषयक ही होते थे और ऐसी ही होती थीं, राजनीतिक बहसें। इस दृष्टि से देखे जाने पर, राजनीतिक दर्शन की विषयवस्तु काफ़ी कुछ नैतिक दर्शन का ही भाग और अंश थी। राजनीतिक बहसों ने नैतिक मुद्दों अथवा युक्तिसंगत आधार पर नैतिक और राजनैतिक सत्य के दावों को निपटाने के एक स्पष्ट उद्देश्य से नैतिक तर्कणा का रूप ले लिया।

राजनीतिक बहसें राजनीति की मूल प्रकृति विषयक कुछ सच्चाइयों को बताने की मंशा रखती थीं, ताकि ऐसे दावे कर सकें जिन्हें वस्तुपरक और आत्मपरक रूप से वैध माना जा सके। यह सच्चाई और वस्तुपरकता विभिन्न मान्यताओं पर आधारित होती थी : कभी कारण विषयक, कभी प्रयोगाश्रित विषयक, कभी संस्था विषयक, और आवसरिक रूप से रहस्योद्घाटन। साथ ही, किसी ज्ञानमीमांसात्मक साक्ष्य का भी आह्वान किया जाता था जैसे कारण अथवा अनुभव, ताकि मौलिक मानवीय आवश्यकताओं, लक्ष्यों, उद्देश्यों, संबंधों और इनके उपयुक्त शासन रूपों को जो राजनीतिक विज्ञान में प्रवेश पा गए हों, सत्य मान लिया जाए। उदाहरण के लिए, प्लैटो, हॉब्स, हेगेल और मिल ने वह संज्ञानात्मक आधार, कम से कम अंशतः, तैयार किया जिस पर राजनीतिक दर्शन में दावों को पेश किया गया।

इस परम्परा में राजनीतिक बहसें इस प्रकार कुछ स्वतःसिद्ध सत्य, स्वयंसिद्धियों, अथवा सत्य या ज्ञान की प्रकृति विषयक मान्यताओं से राजनीतिक सच्चाइयों अथवा सत्यार्थ दावों विषयक निष्कर्षों की दिशा में बढ़ीं। चूँकि दार्शनिकों ने स्वयं ही संज्ञानात्मक सत्य के मानक निर्धारित किए थे, उनकी राजनीतिक बहसों की वैधता को सिर्फ़ आन्तरिक रूप से जाँचा जा सकता है। किसी सिद्धांत-मुक्त मानदण्ड हेतु अपील का प्रश्न ही नहीं था। यदि आपने इस धारणा अथवा सिद्धांत के आधारवाक्य को स्वीकार कर लिया, तो निष्कर्ष की वैधता से बचने का कोई रास्ता ही नहीं था। यह बात बहरहाल अलग थी कि जब कभी आधारवाक्यों पर विवाद हो जाये – यदि उसके संज्ञानात्मक दावे आपत्तियोग्य हों।

वस्तुतः शास्त्रीय परम्परा का इतिहास यह दर्शाता है कि राजनीति दार्शनिकों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में बड़ी भिन्नताएँ थीं, इस तथ्य के कारण कि उनके आधारवाक्यों अथवा ज्ञानमीमांसा में भिन्नता थी। ऐसी स्थिति में ऐसी धारणाओं के महत्त्व के संबंध में एक बात उभर कर आयी। यह पूछा जाने लगा कि राजनीति संबंधी इस प्रकार के सभी प्रतिद्वंद्वी सिद्धांतों की क्या प्रासंगिकता है, जिनमें से प्रत्येक राजनीतिक नैतिकता विषयक सत्य धारण करने का दावा करता था, जब इन राजनीतिक एवं नैतिक सिद्धांतों के संज्ञानात्मक आधार की उपयुक्तता को निर्धारित करने का कोई मापदण्ड नहीं था। इस प्रकार के प्रश्न का सामना करने के लिए प्रत्यक्षवादीजन सबसे आगे रहे।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के संकेत इकाई के अंत में देखें।

1) पश्चिमी शास्त्रीय परम्परा में राजनीतिक बहसों का स्वरूप स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 नियामक सिद्धांत की समीक्षा

प्रत्यक्षवाद, खासकर स्थानीय प्रत्यक्षवाद जो भाषाई दर्शन द्वारा प्रभावित था, ने नियामक राजनीतिक सिद्धांत को अमोच्य रूप से काल्पनिक संज्ञानात्मक आधाररहित और यहाँ तक कि अर्थहीन या निरी बकवास बताकर काफ़ी कुछ अस्वीकार कर दिया।

विटजैन्सटीन, जिन्होंने तार्किक प्रत्यक्षवादी सिद्धांतों को प्रेरित किया, तीन शोध-विषयों को आगे बढ़ाया था, जो कि हमारे लिए यहाँ नियामक सिद्धांत के खिलाफ उदाहरण स्पष्ट करने में रोचक होंगे। पहला था – तर्कशास्त्र व गणित, जिसमें पुनरुक्तियाँ शामिल थीं; दूसरा, भाषा जो कि सत्य-प्रकार्यत्मक प्राधार रखती है और उसके मूल तत्त्व हैं – विभिन्न नाम; और तीसरा, कोई भी नीतिशास्त्रीय अथवा नैतिक कथन निश्चित संज्ञानात्मक सूचना नहीं दे सकते हैं।

प्रथम को श्रमसम्पादित करते हुए विटजैन्सटीन ने कहा कि गणित का मूल प्राधार तर्कशास्त्र से व्युपन्न किया जा सकता है और इस अर्थ में गणित की सच्चाइयाँ पारम्परिक हैं, न कि अंकों और उनके संबंध के विषय में 'तथ्यों' की उद्‌घाटक कहा जा सकता है। कि मूल शब्दों की कुछ परिभाषाओं और निष्कर्षण नियमों की एक विशेष समझ को लेकर गणितीय सच्चाई के समग्र प्राधार को उत्पन्न किया जा सकता है। परन्तु सत्य के ये रूप मूल शब्दों व निष्कषण नियमों संबंधी अपनी परिभाषाओं पर निर्भर करते हैं। एक अर्थ में वे पारिभाषिक रूप से सत्य हैं। ऐसा लग सकता है कि हम गणित में नई खोजें करते हैं, परन्तु ऐसा सिर्फ़ इसलिए है कि परिभाषा के दूरवर्ती परिणामों को पहले से जान पाना कठिन होता है और उन्हें बड़ी ही जटिलता और श्रमसम्पादन द्वारा सुलझाना पड़ता है।

दूसरा शोध-विषय यह है कि भाषा एक ऐसा प्राधार रखती है जिसको तार्किक विश्लेषण द्वारा अनावृत किया जा सकता है। यह विश्लेषण भाषा को सत्य-प्रकार्यात्मक के रूप में प्रकट करेगा। यह कहा जा सकता है कि भाषा में जटिल प्रस्थापना, जिसे हम सूचना पहुँचाने में प्रयोग करते हैं, संघटक प्रस्थापनाओं में विश्लेष्य के रूप में दर्शायी जा सकती है। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया को रोकना पड़ता है और हमारे पास भाषा के मूल निर्माण-खण्ड रह जाते हैं, जिन्हें विटजैन्सटीन 'प्रारंभिक प्रस्थापनाएँ' कहते हैं। इन प्रारंभिक प्रस्थापनाओं में विभिन्न नाम होते हैं : (i) वे सीधे अर्थ प्रदान करती हैं, बजाय दूसरी प्रस्थापना की मध्यस्थता के, और (ii) वे दुनिया से सीधा संबंध रखती हैं।

फलतः यदि भाषा के अर्थपूर्ण प्रयोगों को इस तथ्य पर निर्भर करना पड़ता है कि नाम सीधे लक्ष्यित वस्तुओं का संदर्भ देते हैं, तब इसके स्पष्ट परिणाम नैतिक और राजनैतिक चिंतन हेतु होते हैं। यदि नियामक राजनीतिक रचनाओं में दी गई ये प्रस्थापनाएँ इस विश्लेषण की गुंजाइश योग्य नहीं है तो वे सार्थक नहीं हैं। लक्ष्य या तो भौतिक वस्तुएँ होती हैं या फिर प्रत्यक्ष इंद्रिय अनुभव। राजनीतिक भाषा इस प्रकार गहरे संकट में पड़ जाती है, कारण लक्ष्यित वस्तुओं का संदर्भ देने के लिए उत्तम, न्याय, अधिकार जैसे शब्दों को किस अर्थ में विश्लेषित किया जा सकता है?

अंतिम विषय-विशेष से यह ऊपर चर्चित निष्कर्ष ही निकलता है। नैतिक और मूल्यांकनकारी भाषाएँ आम तौर पर इस सत्य-प्रकार्यात्मक विश्लेषण को स्वीकार नहीं करतीं और नैतिक

'लक्ष्यों' को किसी संज्ञानात्मक सार्थक तरीके से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। केवल भौतिक वस्तुओं के मूल अनुभवों का वर्णन करती वे प्रस्थापनाएँ ही सार्थक हो सकती हैं। इससे यह बात सामने आती है कि किसी प्रस्थापना को वैध होने के लिए आनुभाविक रूप से प्रमाण्य होना चाहिए, जिसके लिए उस प्रस्थापना को प्रत्यक्ष भाव अनुभव का संदर्भ देना चाहिए अथवा वह अनुभव सिद्धांततः स्पष्ट उल्लिखित होना चाहिए, यदि प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध भाव अनुभव शामिल न रहा हो।

यह कहा जा सकता है कि प्राचीन परम्परा के कुछ राजनीतिक सिद्धांत तथ्यात्मक आधारवाक्यों पर आधारित थे, जैसे कि हॉब्स, अरस्तू और मिल के। ये सिद्धांत मानव स्वभाव के तथ्यों पर आधारित थे। उस हद तक, जहाँ तक कि ये तथ्यात्मक आधारवाक्य आनुभाविक हैं, वे सिद्धांततः सत्यापित किए जा सकते हैं और फिर सार्थक हो सकते हैं। प्रत्यक्षवादी जन उन आधारवाक्यों को सार्थक मानेंगे, परन्तु फिर समर्थन के उस स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करेंगे जिनको कि समझा जाता है कि ये आनुभाश्रित कथन नियामक एवं मूल्य-निर्धारक निष्कर्ष प्रदान करते हैं। और इस संदर्भ में उन्होंने ह्यूम का स्तुतिपूर्वक आह्वान किया, जिन्होंने बताया था कि किसी बहस में तथ्यात्मक आधारवाक्य ऐसे सिद्धांतों को निरस्त करने के लिए नियामक, नैतिक अथवा मूल्य-निर्धारक निष्कर्षों को जन्म नहीं दे सकते। ह्यूम के तर्क को प्रायः इस सिद्धांत के रूप में जाना जाता है कि 'जो होना चाहिए था' को किसी 'जो है' से व्युत्पन्न नहीं किया जा सकता है।

5.4 आनुभविक परम्परा में बहसों का स्वरूप

यद्यपि प्रत्यक्षवाद ने नियामक राजनीतिक सिद्धांत को अस्वीकार किया, उसने प्राकृतिक विज्ञानों की कार्यप्रणाली पर आधारित राजनीतिक तथ्यों के एक वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा दिया। इस परम्परा के भीतर रहकर राजनीतिक तर्क की प्रकृति में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव आया, क्योंकि अब विषयवस्तु के साथ-साथ वह कार्यप्रणाली भी, जिस पर वह अपने तर्कों को सही ठहरा सकती, नियामक सिद्धांत वाली कार्यप्रणाली से भिन्न थी।

इन तर्कों की विषयवस्तु के संबंध में, राजनीतिक तर्क केवल अनुभवाश्रित राजनीतिक व्यवहार एवं राजनीतिक अवधारणाओं के तर्काधारित विश्लेषण विषयक ही हो सकते हैं। राजनीति के अध्ययन के संबंध में, इन तर्कों के लिए अपेक्षित था कि अभिकथनों को किसी अनुभवाश्रित भाव संतोष के शब्दों में परिभाषित किया जाए। बदले में, इसके लिए अपेक्षित था कि तर्क व्यवहारात्मक दृष्टिकोण पर आधारित हों, ताकि राजनीतिक रुझानों का अध्ययन किया जा सके, साथ ही वे सामाजिक एवं राजनीतिक तथ्यों हेतु एक व्यक्तिवादी रूपान्तरवादी दृष्टिकोण पर आधारित भी हों। परवर्ती का निहितार्थ था किसी प्रकार का कार्यप्रणालीगत व्यक्तिवाद, ताकि राज्य, समुदाय, राज्यतंत्र जैसी सामाजिक समष्टियों से संबंधित संकल्पनाओं को ऐसे कथनों की शृंखला में रूपान्तरित किया जा सके जो व्यक्तियों के केवल आनुभविक रूप से अवगम्य व्यवहार का संदर्भ दे सके। प्रभावतः, राजनीतिक तर्क पराभौतिकीय कल्पनाओं से मुक्त किए गए और पूरी तरह से मूल्य-निरपेक्ष बन गए, जिनको कि जाँचा और सत्यापित किया जा सकता था, क्योंकि ये तर्क अनुभवाश्रित दृश्यघटनाओं के विषय में थे।

राजनीतिक बहसें, इस परम्परा में, मनुष्य और समाज विषयक प्रागनुभविक तर्क को अस्वीकार करती थीं, और तथ्यपरक और संख्यिकीय परिपृच्छाओं को आधार बनाती थीं। यह जानकारी के सिद्धांत पर आधारित होता था जो अनुभव को एकमात्र प्रामाणिक ज्ञानाधार के रूप में लेता था। इस प्रकार के प्राधार में, राजनीतिक बहसों का उद्देश्य अवलोकनीय दृश्यघटनाओं को स्पष्ट करना ही होता था और इन बहसों की प्रामाणिकता

को परखने का मापदण्ड थे : आन्तरिक सामंजस्य, ऐसी अन्य बहसों के लिहाज से संगति जो संबद्ध दृश्यघटनाओं को स्पष्ट करने का प्रयास करती हों, तथा उन अनुभवाश्रित पूर्वानुभानों को सामने लाने की क्षमता जिनको कि अवलोकन के विरुद्ध जाँचा जा सके। इन बहसों का सत्य दावा न्यायसंगत सिद्ध किया जा सकता था, यदि वह या तो सत्यापन सिद्धांत से मेल खाता हो या फिर पॉपर के मिथ्या-दर्शन सिद्धांत से। प्रत्यक्षवादियों के बीच व्यवहारवादियों ने मिथ्या-दर्शन सिद्धांत ही अपनाया। यदि बहस को मिथ्या सिद्ध नहीं किया जा सकता था तो फिर वह महज पुनरुक्तिपूर्ण ही होती थी; यथा, केवल परिभाषा द्वारा सत्य, और इस प्रकार निरर्थक। बहसों को प्रमाणित होने के लिए मिथ्या सिद्ध करने लायक होने चाहिए, तभी उन्हें वैज्ञानिक विधि पर आधारित कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के संकेत हेतु इकाई के अंत में देखें।

1) नवीन नियामक सिद्धांतों में राजनीतिक बहस का स्वरूप शास्त्रीय परम्परा में राजनीतिक बहस के स्वरूप से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 प्रत्यक्षवाद का पतन और एक विकल्प रूप में व्याख्यात्मक सिद्धांत

यदि सभी सार्थक कथन, सत्यापनीयता के सिद्धांत पर, चाहे पुनरुक्तिपूर्ण हों या फिर आनुभविक रूप से सत्यापनीय, स्वयं-सत्यापन सिद्धांत का प्रतिपादन क्या होगा? प्रत्यक्षवाद के पास इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं था और यह लगता था कि कथनों में अर्थ और अनर्थ के बीच फैसला करने के लिए सही मापदण्ड स्वयं ही निरर्थक है। चूँकि प्रत्यक्षवाद ने इस ज्ञान मीमांसात्मक स्तर को खो दिया था, शक्ति की वृहत्तर मात्रा, अर्थ और भाव का एक अधिक स्वच्छंद दृष्टिकोण उभर कर सामने आया।

व्याख्यात्मक सिद्धांत, अथवा भाष्यशास्त्र, राजनीतिक परिपृच्छा में प्रत्यक्षवादी राजनीति-विज्ञान के एक विकल्प स्वरूप उभरा। व्याख्यात्मक सिद्धांती प्रत्यक्षवादी तरीके के साथ अनेक समस्याओं का उल्लेख करते हैं। वे राजनीतिक जीवन और उस राजनीतिक जीवन की भाषा के बीच एक अवग्रह को मानते हुए अनुभववादी दृष्टिकोण की आलोचना की। दूसरे शब्दों में, वे अनुभववाद की आलोचना उसकी इस धारणा के लिए करते हैं कि एक राजनीतिक यथार्थ है जो विद्यमान है और सिद्धांततः उस राज्य व्यवस्था की भाषा से स्वतंत्र महसूस किया जा सकता है, और एक ओर सामाजिक/राजनीतिक जीवन के बीच आंतरिक संबंध के घटते महत्त्व और दूसरी ओर उसमें निहित भाषा को भी देखा जा सकता है। व्याख्यात्मक सिद्धांती कहते हैं कि हमारे राजनीतिक व्यवहार उस भाषा द्वारा व्यक्त और

संघटित होते हैं जो उनमें (यथा, राजनीतिक व्यवहारों में) बसी रहती हैं, और कि उनमें बसी भाषा अपना अर्थ उन राजनीतिक व्यवहारों के रूप से ही प्राप्त करती है जिनमें वह विकसित होती है। चार्ल्स टेलर का कहना है कि हमारे राजनीतिक व्यवहारों को उस भाषा से अलग करके नहीं देखा जा सकता है कि हम उनका वर्णन करने, उनका आह्वान करने अथवा उन्हें कार्यान्वित करने के लिए प्रयोग करते हैं। इस स्थिति के सामाजिक आयाम की शब्दावली इस आयाम में सामाजिक व्यवहारों के रूप में ही आधार रखती है; यथा, कहा जा सकता है कि शब्दावली का कोई अर्थ नहीं होता यदि व्यवहारों की यह शृंखला अस्तित्व में न होती। और पुनः, यह व्यवहार शृंखला इस अथवा किसी संबद्ध शब्दावली की विद्यमानता के बग़ैर अपना वज़ूद नहीं रखती। यह भाषा, तदनुसार, यथार्थ की संघटक, इस प्रकार के यथार्थ के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

जब भाषा यथार्थ की संघटक हो तो राजनीतिक जीवन की व्याख्या अवश्य ही आनुभविक रूप से अवलोकनीय व्यवहार और आत्मगत प्रवृत्तियों से परे जायेगी। व्याख्या को भाषा एवं राजनीतिक जीवन के अर्थ एवं व्यवहारों को अनावृत्त करने और ऐसे सामाजिक साँचे का निर्माण करने के लिए गहरे पैठना चाहिए जिसके विरुद्ध आत्मपरक प्रवृत्तियाँ बनी हों। इन काफ़ी बुनियादी अन्तरात्मगत एवं सर्वसामान्य अर्थों एवं व्यवहारों को एक गहन भाष्यशास्त्र की आवश्यकता होती है जो अनुभाश्रित परिपृच्छा से अपेक्षित साक्ष्य (आँकड़ों) से भी परे होता है। इस प्रकार, आनुभाविक समाज-विज्ञान राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के सबसे बुनियादी पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए अपर्याप्त है। मानव व्यवहार संबंधी आत्मपरक प्रवृत्तियाँ और आनुभाविक संकेतकों के लिहाज से व्याख्याएँ किंचित् ही पहचान रखती हैं और राजनीतिक जीवन के सर्वाधिक गूढ़ अर्थ और अभिप्राय का कारण बतलाती हैं।

भाषा द्वारा सूचित सामाजिक/राजनीतिक व्यवहारों को अर्थ व्यक्त करने के लिए हमें व्याख्या की ज़रूरत पड़ती है, क्योंकि वे प्रायः अपरिपक्व, अनुक्त और अपूर्ण रूप से व्यक्त की गई होती हैं। परन्तु तब इस प्रकार की कोई भी व्याख्या विवादास्पद होती है क्योंकि किसी एक विशिष्ट व्याख्या के समर्थन करने का मतलब है राजनीतिक विकल्पों की एक शृंखला को सकारना, जबकि दूसरों को गुप्त रूप से क्षति पहुँचती है। व्याख्यात्मक सिद्धांत, इसी करण, मूल्य-शून्य नहीं हो सकता है। गैडमर अपने *ट्रुथ एण्ड मैथॅड* में बताते हैं कि सामाजिक/राजनीतिक व्यवहारों के अर्थ को समझने हेतु एक उचित प्रतिदर्श किसी मूलपाठ की व्याख्या वाला प्रतिदर्श ही होता है : एक प्रतिदर्श जिसमें हम कारणों अथवा कानून-रचना हेतु अनुसंधान में रुचि नहीं रखते, परन्तु उसके अंगों के लिहाज से समूचे को, और योगदानों के लिहाज से उसके अंगों को समझते हुए वे समूचे का ही अर्थ देते हैं। व्याख्यात्मक सिद्धांत ने समाजवादियों, नारी-अधिकारवादियों, और उत्तर-आधुनिकतावादियों के नियामक सिद्धांतों पर हाल के वर्षों में काफ़ी सख़्त प्रभाव डाला है।

5.6 राजनीतिक सिद्धांत में नियामक बदलाव

'सत्तर के दशक में रॉल्स, नॉज़िक, वाल्ज़र, द्वोर्किन, ग्रेविथ व अन्य के हाथों राजनीतिक सिद्धांत में एक नियामक बदलाव देखा गया। शायद, भाग्य बदलने के सबसे बुनियादी कारणों में एक कारण दर्शनशास्त्र में एक कार्यकर शक्ति के रूप में प्रत्यक्षवाद का ह्रास रहा है। बड़े पैमाने पर यह ह्रास स्वयं सिद्धांत को सही सिद्ध करने में अशक्त होने के कारण है, जो कि हमने ऊपर देखा। इसके साथ ही, नियामक राजनीतिक सिद्धांत के पुनरुद्धार हेतु एक प्रेरक वातावरण गहरे नैतिक संकट द्वारा बनाया गया जिसका कि पश्चिमी सभ्यता कर रही थी। इस विचार ने, इसी कारण, जड़ पकड़ ली कि समाज को एक नैतिक आधार की आवश्यकता होती है, यथा उन विश्वासों की एक शृंखला की, जो कि या जो

वह रखता है या उसे रखने चाहिए, जबकि धारणा यह है कि व्यावहारिक कारण निर्मूल और यादृच्छिक होता है, यदि वह एक ऐसे स्वीकृत मूल्यों की शृंखला पर आधारित न हो जो कि उस समाज के लिए प्रामाणिक माने जाते हों।

परन्तु यदि मूल्य व्यक्तिपरक हों, जो कि प्राथमिकता के आधार पर हो सकता है, जैसा कि प्रत्यक्षवादी कहते हैं, तब हम मूल्यों पर सहमत कैसे होंगे? नियामक राजनीतिक सिद्धांत, दूसरी ओर, कहता है कि यह समझौता संभव है, यदि कुछ ऐसे आम सिद्धांतों की शृंखला स्थापित की जाये जो फिर आत्मपरक विचारों के बीच सामंजस्य एवं/अथवा विभिन्न मूल्यों के बीच अधिनिर्णय का आधार प्रदान कर सके। निर्णायक प्रश्न तब यह होगा कि हम आम सिद्धांतों की उस शृंखला को हासिल कैसे करें। इस प्रश्न के दो उत्तर या तरीके हैं।

5.7 आधारवादी और उत्तर-आधारवादी सिद्धांतों में बहसों की प्रकृति

पहला उत्तर यह है कि हम नैतिकता के मूल्यों अथवा मानकों की एक ऐसी शृंखला तैयार करें जो कि सार्वत्रिक, परासांस्कृतिक और अन्तरात्मपरक रूप से प्रामाणिक हो। नैतिकता के इन मानकों को ऐसे आधार कहा जा सकता है जो विशिष्ट संस्कृतियों, परिस्थितियों एवं विशेष इतिहासों से कलुषित नहीं हुए। *नॉउमैनल सैल्फ़* (कैन्ट), *एब्सॅल्यूट स्प्रिट* (हेगेल), *प्रोलिटैरिएट* (मार्क्स), *आइडियाज़ ऑर फ़ॉर्म्स* (प्लेटो) जैसी कृतियों को शामिल करने वाले अधिवृत्तांत एक युक्तियुक्त आधार पर निर्णयन् एवं औचित्य-प्रतिपादन हेतु एक ऐसा ही आधार प्रदान कर सकते हैं। नैतिक सिद्धांतों की दूसरी इस प्रकार की सार्वत्रिक आधारिक शृंखला हो सकती थी : (i) उपयोगितावाद, (ii) कैन्ट का नीतिशास्त्र और (iii) मानव स्वभाव एवं मानवधिकारों संबंधी कुछ अवधारणाएँ। उपयोगितावाद से परे, इन आधारिक सिद्धांतों में से अधिकांश, जहाँ तक कि जानकारी है, गूढ़ तर्कशक्ति पर ही आधारित हैं। अभी हाल ही के दिनों में, सार्वभौमिक युक्तिपरक नैतिकता को जन्म देने का प्रयास किया गया है, या तो प्रक्रियात्मक युक्तियों पर ज़ोर देकर, जैसे रॉल्स का अज्ञान का परदा, या फिर **न्यूनतम नीतिशास्त्रीय प्रतिबद्धता** की अवधारणा पर विचारों का आदान-प्रदान, जैसे कि प्राथमिक वस्तुओं संबंधी रॉल्स की अवधारणा जिन्हें कि किसी भी व्यक्ति द्वारा इच्छित समझा जाता है, या फिर जैसा कि ग्रेविथ की **प्रभाव की न्यूनतम शर्त** संबंधी अवधारणा में है। आधारवादियों के राजनीतिक तर्क, तदनुसार, उन शब्दचिह्नों पर आधारित हैं जो कि मनुष्य, समाज एवं स्वयं की प्रकृति संबंधी एक सामान्य, परन्तु अनिवार्यकृत विवरण प्रस्तुत करते हैं, और युक्तिपरकता एवं वस्तुनिष्ठता संबंधी जिनके मापदण्ड ऐसे ही शब्दचिह्नों से व्युत्पन्न किये जाते हैं, जिनको कि सार्वत्रिक रूप से व्यवहार्य एवं वैध माना जाता है।

दूसरा उत्तर उत्तर-आधारवादियों द्वारा दिया जाता है, यथा साम्यवादियों द्वारा। वैसे तो अनेकों उत्तर-आधारवादी सिद्धांत दृष्टिगत होते हैं, परन्तु यहाँ हम अन्तर्थृत राजनीतिक तर्क की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए केवल साम्यवादियों को ही लेंगे। उनका कहना है कि हमें किसी सार्वत्रिक, सैद्धांतिक नैतिक आधार की आवश्यकता नहीं है, और कि स्पर्धी मूल्यों के बीच निर्णयादेश हेतु वांछित सिद्धांतों की शृंखला एक समुदाय विशेष में अव्यक्त होती है। इस अव्यक्त को सुव्यक्त और स्पष्ट बनाना होता है। राजनीतिक लाभ दुर्बोध तर्कणा द्वारा निर्धारित नहीं होते हैं, न ही उन्हें निर्मुक्त लघुकृत नैतिक अभिकर्त्ताओं द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक चुना जा सकता है। ये विशिष्ट समुदायों की जीवन-पद्धतियों से जन्म लेते हैं, और उन्हीं में व्यक्त होते हैं। साम्यवादी तर्कों को व्याख्यात्मक भाषायी सिद्धांत से समर्थन मिला, उदाहरण के लिए, *फ़िलोसॅफ़िकल इन्वेस्टिगेशन* और *दि ब्लू बुक* में विट्जैन्स्टीन के नवीन लेखों से, जो कि व्यावहारिक तर्कणा हेतु किसी बाह्य युक्तिपरक

आधार हेतु खोज पर विचार करते हैं जैसी कि मिथ्या धारणा है, क्योंकि यदि उनको पाया भी जा सकता, तो वे, वस्तुतः, व्यावहारिक धर्मसंकट के संबंध में निष्क्रिय ही होते। किसी जीवन-पद्धति के लिए हमें किसी सैद्धांतिक आधार की ज़रूरत नहीं होती। व्यावहारिक कारण सोफ़िया (विवेक), यथा वस्तुपरक ज्ञान के न्यायसंगत दावों के विषय में नहीं है, वरन् फ्रोन्सैसिस (निर्णय) के विषय में हैं, यथा किसी परिस्थिति विशेष में व्यावहारिक विचारात्मक निर्णय की क्षमता। राजनीतिक तर्क की प्रकृति चूँकि उस विधितंत्र पर निर्भर होती है जिसमें उसे रूपायित किया जाता है, चलिए, उत्तर-आधारवादी राजनीतिक सिद्धांत में राजनीतिक तर्क की व्याख्या करने हेतु एक उदाहरण के रूप में राजनीतिक सैद्धांतीकरण के लिए स्वयमर्थक संतुलन संबंधी रॉल्स की कार्यप्रणाली पर एक सरसरी नज़र डालते हैं। एक व्याख्या उपयुक्त होगी। रॉल्स को उसकी कुछ धारणाओं के लिए आम तौर पर एक आधारवादी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जैसा कि रॉल्स के निर्णय संबंधी माइकल सैडल की समालोचना में आता है, परन्तु साधारणतया स्वयमर्थक संतुलन संबंधी रॉल्स की कार्यप्रणाली को स्वभावतः उत्तर-आधारवादी के रूप में ही स्वीकार किया जाता है।

स्वमर्थक संतुलन की विधि का तकाज़ा है कि अपने 'सामान्यता के सभी स्तरों पर समझे गए निर्णयों के विरुद्ध हम उसकी जाँच कर एक प्रदत्त नैतिक अथवा राजनीतिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन करें। यथा, हम उसके आंतरिक संबंधों और सतही सत्याभास (उनका समर्थन करते तर्कों के साथ) के लिहाज से इस सिद्धांत को समाविष्ट करने वाले दुर्बोध सिद्धांतों की सामान्य संगति को समझें; हम, तदोपरांत, उन विशिष्ट निर्णयों की जाँच करें जिनको कि इस प्रकार के सिद्धांत विश्व में निर्दिष्ट उदाहरणों के विषय में अर्थसूचित करते हैं; साथ ही, हम उसके दुर्बोध सत्याभास, आंतरिक संगति एवं विशिष्ट उदाहरणों में 'अन्तर्दर्शी पर्याप्तता' को ध्यान में रखते हुए उसकी समस्त ग्राह्यता हेतु समग्र सम्वेष्टन पर विचार करें।

स्वयमर्थक संतुलन नियामक दावों की वैधता का एक सुसंगत विवरण है। यह 'आधारवाद' से इस बात में भिन्न है कि वह यह माँग नहीं करता कि हम असंदिग्ध प्रथम सिद्धांतों से आगे बढ़ें और सिर्फ़ उनसे ही एक आनुमानिक तर्क के माध्यम से निष्कर्ष निकाल लें। इसका मतलब है कि नियामक सिद्धांत हमेशा ही नई शर्तों के आलोक में समीक्षा अधीन होते हैं, जो कि या तो नैतिक सिद्धांतों के संबंध में होती हैं या फिर दुनिया के उन पहलुओं से संबंधित जिनके प्रति इन सिद्धांतों को अपनाया जाना होता है। व्याख्या की, तदनुसार, राजनीतिक सैद्धांतीकरण में निभाये जाने के लिए एक भूमिका होती है और तथ्य यह भी है कि राजनीतिक निर्णय कदाचित् ही पक्के होते हैं, बल्कि वे हमेशा नई अन्तर्दृष्टियों अथवा जानकारी के आलोक में पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

उत्तर-आधारवादी सिद्धांतों में राजनीतिक तर्क, तदनुसार, सामाजिक सत्यता के विषय में आम सोच अथवा तर्कणा को नहीं छोड़ते हैं। परन्तु यह तर्क हमेशा एक सामाजिक रूप से स्थापित दृष्टिकोण से होता है, जो कि इस धारणा पर आधारित होता है कि हमारी सामाजिक रुचि और सामाजिक मूल्य ही हमारे विचारों को रूपायित करते हैं और कि हमारा सामाजिक बोध भी सामाजिक जीवन को रूपायित करने का ही एक हिस्सा है। यहाँ एक बहुस्तरीय तर्क सन्निहित है जो कि विश्लेषणात्मक तर्कशक्ति, आनुभाविक आँकड़ों, नियामक स्पष्टीकरण एवं व्याख्या के बीच विश्वास पैदा करता है। राजनीतिक तर्क आमतौर पर जटिल होते हैं और संशोधक सीमाओं को लाँघकर सामने आते हैं, विशेषतः विटजैन्स्टीन की भाषा-नीति की सीमाओं को। वस्तुनिष्ठता एवं युक्तिपरकता जिनका कि राजनीतिक तर्क औचित्य-प्रतिपादन हेतु आह्वान करते हैं, प्रासंगिक होते हैं, क्योंकि ऐसा कोई प्रासंगिक स्वतंत्र विचाराधार नहीं है जिस पर कि सामाजिक व्यवहारों को परखा जा सके। तदनुसार,

किसी राजनीतिक तर्क में सत्यता हेतु कसौटियाँ – सही और ग़लत – भाषा-नीति एवं प्रसंग हेतु पूरी तरह आंतरिक होती हैं।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के संकेत हेतु इकाई के अंत में देखें।

1) आनुभाविक-व्यावहारिक परम्परा के एक विकल्प स्वरूप भाष्यशास्त्र की समीक्षा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आधारिक और आधारिकोत्तर सिद्धांतों के बीच तर्क-वितर्क की प्रकृत्ति में क्या भेद हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 संकल्पनात्मक विश्लेषण

हम किसके विषय में क्या तर्क देते हैं और कैसे वह तर्क प्रस्तुत करते हैं, दोनों ही बातों का संबंध इस बात से है कि हम क्यों और कैसे संकल्पनात्मक विश्लेषण करते हैं। संकल्पनाएँ विद्वतापूर्ण प्रयासों के लिए दो अर्थों में निर्याणक हैं : साधन स्वरूप और साध्य स्वरूप। साधनों के रूप में संकल्पनाएँ ज्ञान हेतु आवश्यक हैं; वे ज्ञान की संभावना हेतु शर्तें हैं। इस अर्थ में, विज्ञान संकल्पनाओं के माध्यम से संभव बनाया गया अर्न्तात्मगत रूप से नियंत्रित ज्ञान है। संकल्पनाएँ व्याख्या के लिए भी निर्णायक होती हैं, और इसी कारण, संकल्पनाएँ कैसे जन्म लेती हैं भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार, संकल्पनाएँ न सिर्फ़ ज्ञान का साधन हैं, वरन् साध्य स्वरूप एक ज्ञान का विषय भी हैं।

संकल्पनात्मक विश्लेषण के तीन रूपान्तरण हैं। प्रथम रूपान्तरण का उद्देश्य होता है– किसी गूढ़ अर्थ को यथासंभव द्वयर्थक से मुक्त करना; एक ऐसी व्याख्या जो यथासंभव सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक कथनों, प्राक्कथन विरचन एवं पुनरुत्पाद्य आनुभाविक विश्लेषण को स्वीकार करती है। द्वितीय रूपान्तरण इस बात पर विचार करता है कि विशिष्ट सामाजिक सिद्धांतों में संकल्पनाएँ किस प्रकार निहित हैं; यहाँ संकल्पना निर्माण सिद्धांत निर्माण के समानान्तर ही चलता है; अधिक सामान्य तौर पर – सिद्धांतों को विश्लेषण हेतु एक

प्राधार के रूप में लिया जाता है। प्रथम रूपान्तरण संकल्पनात्मक इतिहास पर विचार करता है, जो कि वर्तमान समेत, इतिहास की एक बेहतर समझ की ओर ले जा सकता है।

इन रूपान्तरणों पर चर्चा को संकल्पनात्मक विश्लेषण हेतु दो दृष्टिकोणों के तहत परिकल्पित किया जा सकता है – प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण।

5.8.1 प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण

जैसा कि हमने ऊपर देखा, तार्किक प्रत्यक्षवाद नामक असरकारी आन्दोलन का अनुसरण करने वाले दार्शनिकों ने परिपृच्छा के केवल दो सार्थक प्रकारों को समझा : तथ्यपरक विषयों में आनुभाविक खोजबीन, और शब्दों के अर्थों एवं प्रयोगों की संकल्पनात्मक चर्चाएँ। चूँकि दर्शनशास्त्र कोई अनुभवपरक, तथ्य-खोजी चिंतन नहीं थी, उसे संकल्पनात्मक विश्लेषण की भूमिका सौंपी गई।

संकल्पनात्मक विश्लेषण का उद्देश्य ठीक वैसा ही था जैसा कि विज्ञान के दार्शनिकों ने वैज्ञानिक संकल्पनाओं के तार्किक विश्लेषण के संबंध में किया; कार्यतः उनका अर्थ स्पष्ट करना और उन्हें एक पूरी तरह आनुभविक, ग़ैर-पराभौतिकीय एवं कारगर अर्थ प्रदान करने में मदद करना।

इस अर्थ में, राजनीतिक दर्शनशास्त्र राजनीति-विज्ञान का एक सहायक था, जो उन्हें प्रयुक्त संकल्पनाओं तथा व्याख्यात्मक एवं अनुभवजन्य अर्थ के अलावा किसी भी चीज़ से शून्य करने के प्रयास हेतु तर्कों को स्पष्ट करता था, ताकि राजनीतिक संलाप के शब्दों को ऐसे तरीकों से प्रयोग किया जा सके कि जो वैचारिक एवं नैतिक पहलुओं के बीच पक्षपातशून्य हों। उम्मीद यह थी कि ठीक उसी तरीके से जिस प्रकार वैज्ञानिक सिद्धांतों को आगे बढ़ाया जा सकता था और वैज्ञानिकों की नैतिक व अन्य किसी प्रतिबद्धता पर ध्यान बग़ैर वैज्ञानिक तथ्यों की व्याख्या और पहचान की जा सकती थी, राजनीति-विज्ञान भी एक मूल्यरहित तरीके से आगे जा सकता था, यदि एक बार उस विज्ञान की मूल संकल्पनाओं को पहचान लिया जाए और एक परिवर्त्य आनुभविक परिभाषा दे दी जाए, और साथ ही, वह राजनीतिक बहस स्पष्ट संकल्पनाओं एवं सम्मत परिभाषाओं को लेकर आगे बढ़ सकती थी। यह खोज आवश्यक थी, क्योंकि जब तक यह सफल नहीं होती, वह राजनीति का एक विज्ञान रखने की उम्मीद नहीं कर सकती थी और जब तक राजनीति का कोई विज्ञान नहीं होता, हम राजनीतिक एवं नैतिक तर्क-वितर्कों हेतु कारण प्रस्तुत करने की अपेक्षा नहीं कर सकते थे। लक्ष्य था – राजनीतिक परिपृच्छा की भाषा को पुनर्गठित करना, ताकि उसे राजनीति के विज्ञान हेतु एक उपयुक्त माध्यम बनाया जा सके।

तथापि, प्रत्यक्षवाद के प्रभाव से बाहर रहने वाले राजनीति-सिद्धांतियों को संकल्पनात्मक विश्लेषण में कोई अर्हता प्राप्त नहीं है, जिनका कि उद्देश्य नैतिक रूप से उन पक्षपातशून्य संकल्पनाओं को जन्म देना है जो राजनीति-विज्ञान में ठीक उसी प्रकार की व्याख्यात्मक कारगर भूमिका निभायेंगी जैसी कि प्राकृतिक विज्ञानों में वैज्ञानिक संकल्पनाएँ निभाती हैं। दृष्टांत के गुण-दोष से परे, वे इसे अवांछित भी मानते हैं।

5.8.2 व्याख्यात्मक दृष्टिकोण

संकल्पनात्मक विश्लेषण का उद्देश्य संकल्पना-विशेष की आवश्यक एवं पर्याप्त शर्त (परिभाषा) को उजागर करना अथवा उसकी आंतरिक संरचना को उघाड़ना नहीं है, वरन् उन्हें समझने के नए-नए रचनात्मक तरीके ईज़ाद करना है। संकल्पनाएँ निर्मुक्त स्थापित सत्ताएँ नहीं हैं और उन्हें उस वृहद् संदर्भ में समझा जाना होता है जिसमें वे स्थापित होती

हैं, यथा जिस तरीके से एक साहित्यिक मूलपाठ की व्याख्या की जाती है। संकल्पनाएँ जिस तरीके से प्रयोग की जाती हैं उससे वे सार्थक हो जाती हैं और इससे संकल्पनात्मक विश्लेषण एक जटिल, अनन्त और विवादास्पद मामला बन जाता है।

कोनोली का तर्क है कि राजनीतिक संकल्पनाएँ जैसे स्वतंत्रता, सत्ता, आदि 'अनिवार्यतः' विवादास्पद हैं। वे 'विवादास्पद' हैं क्योंकि इस संकल्पना की कसौटियाँ और उसका प्रयोग प्रसंग बहस के विषय हैं। कसौटियों से यहाँ मतलब है – किसी घटना या कार्रवाई से पूर्व वे शर्तें पूरी होनी चाहिए जो प्रदत्त संकल्पना के दायरे में आती हैं कहा जा सकता है। प्रयोग प्रसंग का अर्थ है – संकल्पना-विशेष का उद्देश्य और इस उद्देश्य के साथ ही, उससे जुड़ी हैं वचनबद्धताएँ। 'संकल्पनाएँ अनिवार्यतः विवादास्पद हैं' का मतलब है कि तर्क की 'सार्वभौमिक' कसौटियाँ इन विवादों को निश्चित रूप से सुलझाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

प्रत्यक्षवादी मुख्यधारा सामाजिक विज्ञानों की सुव्यवस्थित अभिधारणाएँ एवं मानक, जैसे कारगर एवं ग़ैर-कारगर शब्दावली, विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषात्मक कथन, व्याख्यात्मक एवं नियामक संकल्पनाएँ, आनुभाविक एवं संकल्पनात्मक तर्क संदेहास्पद वैधता वाले हैं। कोनोली बताते हैं कि भाषाई दर्शनशास्त्र में नवीन कृतियाँ दर्शाती हैं कि अनुसंधान के इन मानकों को संशोधनार्थ दोहराये जाने की आवश्यकता है। इन मानकों की नए आलोक में व्याख्या किया जाना, जो कि, उदाहरण के लिए, विश्लेषणात्मक भिन्नताओं एवं तथ्य-मूल्य द्वादैश्य की ओर प्रवृत्त करता है, कोनोली बताते हैं, यह अधिक स्पष्ट रूप से समझने में मदद करता है कि क्यों राजनीति की मुख्य संकल्पनाएँ इतने प्रायिक रूप से विवाद का विषय बन जाती हैं।

इसके अतिरिक्त, वह बताते हैं कि पक्षपातशून्य, व्याख्यात्मक एवं कारगर रूप से परिभाष्य संकल्पनाएँ राजनीति की समझ को सीमित कर देती हैं। यह न केवल सन्निहित अर्थ को धराशायी कर देती है, बल्कि राजनीति विषयक वैकल्पिक, मौलिक पहलुओं की गवेषणा हेतु प्रयासों को बाधित भी कर देती है। पक्षपातशून्य कारगर संकल्पनाओं को रखने का प्रयास राजनीति से बचने की एक इच्छा स्वरूप जन्मा है। यह या तो जनजीवन को युक्तिसंगत करने की एक इच्छा के रूप में जन्मता है, जहाँ द्वयर्थकताओं एवं विवादास्पद अभिविन्यास की एक शृंखला को शर्तों एवं प्राथमिकताओं की व्यवस्थित प्रणाली के नियंत्रण में रखते हैं, अथवा जनजीवन की नैतिक व्याख्या करने हेतु एक खोज के रूप में, जहाँ सभी नागरिकों को समग्रतः एक सर्वसम्मति के अधीन ले आती है जो राजनीतिक को उपांतिक और अमहत्त्वपूर्ण बना देती है। राज्य व्यवस्था में प्रचलित संकल्पनाओं को संशोधनार्थ दोहराए बग़ैर अपनाना, इसी कारण स्थापित प्रथाओं के पक्ष में डूबी बातचीत की शर्तों पर स्वीकार करना ही है।

उपर्युक्त के आलोक में, विवादास्पदता की संकल्पना का महत्त्व यह है कि वह राजनीति की भाषा में टिके विवादास्पद नैतिक एवं राजनीतिक पहलुओं को सामने लाने के लिए अधिक आत्ममननशील राजनीतिक संलाप प्रस्तुत करती है और इस प्रकार, राजनीतिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती है।

बोध प्रश्न 4

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर के संकेत हेतु इकाई के अंत में देखें।

1) संकल्पनात्मक विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? संकल्पनात्मक विश्लेषण के प्रत्यक्षवादी और व्याख्यात्मक विवरणों के बीच भेद बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.9 सारांश

चूँकि हमारे पास राजनीतिक सिद्धांत के विभिन्न परंपराएँ हैं और हरेक विशिष्ट सारयुक्त एवं सुव्यवस्थित विषयों द्वारा पहचान प्राप्त हैं, राजनीतिक बहसों का स्वरूप भिन्न-भिन्न परंपराओं में भिन्न-भिन्न होता है। राजनीतिक बहसों में चूँकि सत्य-दावों के औचित्य प्रतिपादन एवं वैधता शामिल होती है, विभिन्न परंपराओं के ज्ञान का सिद्धांत एवं प्रासंगिक ज्ञानमीमांसा की कार्य-प्रणाली ही राजनीतिक बहसों के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। राजनीतिक बहसें और संकल्पनात्मक विश्लेषण तार्किक रूप से जुड़े हैं। संकल्पनाएँ ही वे शब्द अथवा शब्दावली हैं जिनको लेकर राजनीतिक संवाद किया जाता है। राजनीतिक बहसें अन्दर ही अन्दर जन्म ले लेती हैं और संकल्पनाओं के माध्यम से आगे बढ़ायी जाती हैं। नियामक राजनीतिक सिद्धांत सही एवं उत्तम के विषय में थे और इसी प्रकार राजनीतिक बहसें भी। राजनीतिक बहसों ने एक युक्तियुक्त आधार पर नैतिक मुद्दों अथवा नैतिक-राजनैतिक सत्य-दावों को निबटाने के एक स्पष्ट उद्देश्य को लेकर नैतिक तर्कशक्ति का रूप ले लिया। इस परंपरा में राजनीतिक बहसें राजनीतिक सच्चाइयों अथवा सत्य-दावों विषयक निष्कर्षों की दिशा में, सत्य अथवा ज्ञान के स्वरूप विषयक कुछ निश्चित स्वतः प्रमाणित सत्यों, स्वयंसिद्धियों, अथवा अवधारणाओं से निकल कर आईं।

प्रत्यक्षवादियों ने नियामक सिद्धांत की आलोचना की। यदि नियामिक राजनीतिक लेखों में दिए गए कथन आनुभविक सत्यापन अथवा खंडन के प्रति सहज प्रभाव्य नहीं हैं तो वे सार्थक नहीं हैं। जबकि प्रत्यक्षवाद ने नियामक राजनीतिक सिद्धांत को निरस्त कर दिया, उसने प्राकृतिक विज्ञानों की कार्यप्रणाली पर आधारित राजनीतिक दृश्यघटनाओं के एक वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहित किया। जहाँ तक कि इन बहसों के विषय का संबंध है, राजनीतिक बहसें केवल राजनीतिक संकल्पनाओं संबंधी अनुभवजन्य राजनीतिक व्यवहार एवं तार्किक विश्लेषण के विषय में हो सकती थीं। इसे, बदले में, अपेक्षा थी कि बहसें राजनीतिक प्रवृतियों के अध्ययन के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक दृश्यघटनाओं के प्रति एक व्यक्तिवादी लघुकारक दृष्टिकोण पर भी आधारित हों। व्याख्यात्मक सिद्धांत, अथवा भाष्यशास्त्र प्रत्यक्षवादी राजनीति-विज्ञान के प्रति एक विकल्प के स्वरूप राजनीति परिपृच्छा में उभरा। इसने राजनीतिक जीवन और उस राजनीतिक जीवन की भाषा के बीच एक वियोजन की परिकल्पना करने के लिए अनुभवजन्य दृष्टिकोण की आलोचना की। व्याख्या को भाषा एवं राजनीतिक जीवन के अर्थ एवं प्रयोगों को उजागर करने के लिए और गहराई में जाना ही चाहिए जो कि उस सामाजिक साँचे का निर्माण करते हैं जिसके विरुद्ध वस्तुपरक अभिप्रायों का जन्म होता है। अतएव, अनुभवजन्य सामाजिक विज्ञान राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के सबसे मौलिक पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए अपर्याप्त है। वस्तुपरक प्रवृत्तियों एवं व्यवहार के आनुभाविक संकेतकों के शब्दों में व्याख्याएँ इतनी

संक्षिप्त हैं कि राजनीतिक जीवन के सबसे गहरे अर्थ एवं भाव को पहचानना और उसका कारण बताना मुश्किल होता है।

भाष्यशास्त्र तथा पश्चिमी सभ्यता द्वारा अनुभव किए गए नैतिक संकट के प्रभाव की वजह से, राजनीतिक सिद्धांत ने एक नियामक मोड़ लिया। तथापि, आधारवादियों एवं उत्तर-आधारवादियों के बीच कार्यप्रणाली एवं ज्ञानमीमांसा के संबंध में भेदों के कारण नियामक सैद्धांतीकरण के भीतर राजनीतिक बहसों का स्वरूप भिन्न था। अन्ततः, हमने दो दृष्टिकोणों को अपनाने वाले संकल्पनात्मक विश्लेषण को भी देखा। प्रत्यक्षवादियों के लिए, संकल्पनात्मकता का अर्थ था पक्षपातशून्य कारगर संकल्पनाओं को जन्म देना। व्याख्यात्मक सिद्धांती ऐसे प्रयासों को अस्वीकार करते हैं। वे राजनीतिक संकल्पनाओं के 'अनिवार्यतः' विवादास्पद स्वरूप पर ज़ोर देते हैं और आगे तर्क देते हैं कि पक्षपातशून्य संकल्पनाएँ स्थापित प्रथाओं का पक्ष लेती हैं और राजनीति विषयक आलोचनात्मक विचार में बाधा डालती हैं। विवादास्पदता की संकल्पना राजनीति की भाषा में टिके विवादयोग्य नैतिक एवं राजनीतिक पहलुओं को सामने रखकर अधिक आत्ममननशील राजनीतिक संलाप प्रस्तुत करती है।

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एम. गिब्बन (सं.), *इण्टरप्रेटिंग पॉलिटिक्स*, बेसिल ब्लैक वैल, ऑक्सफ़ोर्ड, 1987।

जॉन क्रिस्टमैन, *सोशल एण्ड पॅलिटिकॅल फ़िलोसॅफ़ी, ए कॉन्टैम्पॅरेरी इण्ट्रोडक्शन*, रूटेज, लंदन, 2002।

जॉन ग्रे कृत ''ऑन द कॉन्टैस्टेबिलिटी ऑफ़ सोशल एण्ड पॅलिटिकॅल कॅन्सैप्ट्स'', *पॅलिटिकॅल थिअरी*, खण्ड 5 (1977)।

पी. लैसले, *इण्ट्रोडक्शन टु फ़िलोसॅफ़ी, पॉलिटिक्स एण्ड सोसाइटि*, सीरीज़ 1, ब्लैक वैल, ऑक्सफ़ोर्ड, 1956।

विलियम कॉनोली, द *टर्म्स ऑफ़ पॅलिटिकॅल डिसकॅर्स*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटि प्रेस, प्रिंसटन, 1974।

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 5.2

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 5.3 और 5.4

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 5.5 और 5.6

2) देखें भाग 5.7

बोध प्रश्न 4

1) देखें भाग 5.8